गाँव एवं गांधी : एक विश्लेषण

डॉ0 मनोज कुमार तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्राचीन काल से ही गाँव भारतीय सामाजिक संगठन की महत्वपूर्ण इकाई होने के कारण राजनीकि संगठन की सबसे महत्वपूर्ण एवं मूल इकाई रहा है। यह अपने आप में पूरे संसार सदृश ही था।[1] भारतीय ग्रामों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि, राजनीतिक उथल–पुथल से अप्रभावित रहते हुए प्रत्येक गाँव विकसित एवं समृद्ध होता रहता था।[2] सर जार्ज बुड का मानना था कि 'राजनीतिक क्रान्तियों से अप्रभावित रह कर इन स्थानीय निकायों ने जाति की संस्कृति के संरक्षण में सहायता पहुचायी है।[3] यह दावा किया जाता है कि भारत में इस ग्राम गणराज्य पद्धति का प्रवर्तन गंगा–यमुना के दोआब में बस्तियां बसाते समय राजा पृथु ने किया था।[4] वैदिक काल में गाँव अपने सरल कार्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर लेते थे।[5] उत्तर वैदिक काल एवं स्मृतियों के काल में भी ग्राम, राज्य के ढ़ांचे की सबसे मूलभूत एवं महत्वपूर्ण राजनीतिक इकाई थी एवं ग्रामिक के रूप में गाँव के मुखिया का उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति में मनु ने यह निर्देशित किया है कि जो ग्राम समाज के अनुबंध को भंग करे उसे देश निकाले का दण्ड देना राजा के लिए उचित है।[6] कौटिल्य ने भी ग्राम–गणराज्यों तथा शुक्राचार्य ने ग्राम राज्यों पर प्रकाश डाला है। पूरे मध्य काल में भी साम्राज्यों के परिवर्तन के बावजूद भारत में ग्राम्य तन्त्र जस का तस बना रहा। सर चार्ल्स मेटकाफ ने भी इस व्यवस्था की सार्थकता को स्वीकारते हुए लिखा कि–

ग्रामीण समाज छोटे–छोटे गणराज्यों के सदृश है, अपनी आवश्यकता की प्रायः सभी वस्तुओं के उत्पादन एवं विदेशी (शहरी) सम्बन्धों से प्रायः स्वतन्त्र। एक के बाद एक राजवंशों का पतन होता रहा, क्रान्तियों के बाद क्रान्तियाँ होती रही किन्तु ग्रामीण समाज वैसा ही बना रहा। मेरी धारणा है कि अपने में छोटे से पृथक राज्य के सदृश ग्रामीण समाज की पंचायत ने भारत में होने वाले समस्त परिवर्तनों एवं क्रान्तियों के मध्य भी भारतीय जनता के परिरक्षण में अन्य किसी भी तत्व की तुलना में अधिक योगदान दिया। पंचायत उनके सुख–साधन स्वतन्त्रता एवं आत्म निर्भरता के उपभोग में बहुत अधिक सहायक रही है।[7] डा0 राधाकुमुद मुखर्जी ने भारत के इस आत्मनिर्भर ग्राम्य तन्त्र का विश्लेषण करते हुए लिखा कि–स्थानीय शासन के आत्मनिर्भर विकास ने कछुए की पीठ के समान वह वोट प्रदान की, जो शान्तिमय स्वर्ग के समान थी और देश में राजनीतिक तुफानों के आने पर जहाँ राष्ट्रीय संस्कृति अपने संरक्षण के लिए आत्म संगोपन कर सकती थी।[8]

भारत में ब्रिटिश इस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की स्थापना से पूर्व तक आत्मनिर्भर भारतीय ग्राम्य तन्त्र बौद्धिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़ने के बावजूद अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को अपने में समेटे हुए अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति कर सद्भावना के साथ एक खुशहाल जीवन व्यतीत कर रहा था। प्रो0 एस0एन0 अग्रवाल ने लिखा कि–ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन से पूर्व तक हिन्दू, मुस्लिम एवं पेशवा शासनों में भारतीय ग्रामीण गणराज्य विकसित होते रहे। आगे उन्होंने यह निष्कर्ष दिया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्यधिक एवं अनैतिक लोभ एवं शोषण के कारण ये ग्राम पंचायतें क्रमशः विघटित होती गयीं। गाँव की काश्तकारी पद्धति के स्थान पर रैयतवारी पद्धति के जानबूझ कर किये गये प्रवर्तन ने ग्रामीण गणराज्यों के सामूहिक जीवन का अन्त ही कर दिया। ब्रिटिश नौकरशाही के हाथों में समस्त प्रशासनिक एवं न्यायिक अधिकारों के केन्द्रीकरण द्वारा ग्रामीण पदाधिकारी अपने युग–युग से चले आने वाले अधिकार एवं प्रभाव से वंचित हो गये।[9]

ए0आर0 देसाई का मानना है कि भारतीय ग्राम समुदाय पुरानी राजनीतिक उथल–पुथल, युद्ध और आक्रमण का आघात सफलतापूर्वक सम्भाल सका था। लेकिन भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व, नये प्रकार के राजनीतिक शासन तन्त्र एवं आधुनिक पूंजीवाद के वाणिज्यिक और औद्योगिक शक्तियों से परास्त हो गया। आत्मनिर्भर गाँवों का विनाश ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील कार्य था। लेकिन गाँव के

सामुदायिक जीवन उनके मधुर मानवीय सम्बन्धों और युद्ध एवं दुर्भिक्ष के अतिरिक्त अन्य दिनों की पारस्परिक सुरक्षा की भावना का विनाश दुःखद तथा कारूणिक भी था।[10]

कम्पनी के पूंजीवादी शोषण और अत्याचारों से युक्त औपनिवेशिक नीतियों ने गाँव के सामुदायिक और स्वायत्तशासी चरित्र को समाप्त कर दिया। नये शासन ने वन भूमि एवं कृषि भूमि दोनों पर से गाँव के सामूहिक नियन्त्रण को छीन लिया। अब दोनों राजकीय या निजी सम्पत्ति हो गये। पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा कि 'कलम की एक चोट से, सरकार ने रैयत के चिरकालीन सामुदायिक अधिकारों को समाप्त कर दिया और इस तरह ग्रामीण समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए।'

इस कारण गाँव वालों के सम्मिलित स्वार्थ और आर्थिक सहयोग पर आधारित परम्परागत पारस्परिक सम्बन्ध सूत्र नष्ट हो गये। सदस्यों के सहयोग और सामुदायिक जीवन पर आधारित स्वायत्तशासी गाँव समाप्त हो गये। अब गाँव केन्द्रीय सत्ता की एक प्रशासकीय इकाई मात्र रह गया और राष्ट्रीय या वास्तव में वैश्विक अर्थव्यवस्था पर निर्भर उसका एक सबसे छोटा साधारण इकाई बन गया। परम्परागत गाँव की आर्थिक, प्रशासकीय, सामाजिक, आत्मनिर्भरता समाप्त हो गयी।

सम्मिलित आर्थिक नैतिक स्वार्थ और उससे उपजे सहयोगी धनिष्ठ सम्बन्धों पर आधारित सामुदायिक ग्रामीण जीवन के बदले भौतिकता अर्थात् प्रतियोगिता और संघर्ष पर आधारित नयी व्यवस्था विकसित होने लगी। इस नयी व्यवस्था ने परम्परागत भारतीय ग्राम्य व्यवस्था के मूल तत्वों को समूल नष्ट कर दिया। क्योंकि अब ग्रामवासियों को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी औपनिवेशिक पूंजीवादी व्यवस्था का अंग बनना आवश्यक था।

इस औपनिवेशिक प्रशासनिक एवं पूँजीवादी व्यवस्था ने भारतीय गाँवों में अनेक नयी समस्याओं को जन्म दिया। ये समस्याएं इंसान के जीवन रक्षण से सम्बन्धित थी अतः ग्रामवासी जो राजनैतिक दृष्टि से उदासीन थे, ने दो वक्त की रोटी एवं परिवार की सुरक्षा के लिए नयी व्यवस्था के साथ सामन्जस्य स्थापित कर लिया। परन्तु इस व्यवस्था ने गाँव के जीवन को नारकीय बना दिया। चूंकि औपनिवेशिक व्यवस्था लाभ एवं शोषण के अधिकतम अवसरों की पक्षपाती थी इसलिए शोषण को उन्होंने प्रमुख अस्त्र बनाया, जिसने ग्रामीणों के सभी आर्थिक अधिशेष हड़प लिए। जिसका परिणाम हुआ कि 20वीं शदी के प्रारम्भ तक आते–आते भारतीय गाँवों का जीवन स्तर बहुत ही निचले स्तर पर पहुंच गया। समस्याओं का अनन्त भण्डार दिखाई देने लगा। गरीबी, दरिद्रता, बन्धुआ मजदूरी, अशिक्षा, बेरोजगारी, ऋण ग्रस्तता, जातिपात, छुआछूत, अस्पृश्यता, नशाखोरी, गन्दगी, भिक्षावृत्ति, अकाल, अतिवृष्टि, संक्रामक रोग, पिछड़ी कृषि इत्यादि ने ग्राम्य जीवन को रसातल में पहुँचा दिया।

20वीं शदी के दूसरे दशक तक आते–आते अनेक चिंतकों, समाज सुधारकों एवं विदेशी विधानों तथा विचारकों ने गाँव की समस्याओं के बारे में बातचीत प्रारम्भ कर दी थी तथा ग्राम्य जीवन को उन्नत बनाने के प्रयत्न भी। इसी समय तक गांधी दक्षिण अफ्रीका से लौटकर भारतीय परिस्थितियों का अध्ययन कर राजनीति में सक्रिय हो रहे थे।

गांधी ने देशाटन तथा पद यात्राओं के माध्यम से देश के शहरों के साथ–साथ गाँवों का भी गहराई से अध्ययन किया, गांधी भारतीय गाँवों के विघटन एवं उनकी बढ़ती समस्याओं से काफी व्यथित हुए। भारतीय गाँवों के सर्वनाश को देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठता था।[11] 13 अक्टूबर 1921 को गांधी ने 'यंग इण्डिया' में भारतीय गाँवों के शोषण और कष्टों का उल्लेख करते हुए लिखा कि ''यह एक रक्त बहाने की प्रक्रिया है जो पिछले दो सौ वर्षों से चली आ रही है।''

महात्मा गांधी का यह दृढ़ मत था कि भारत की आत्मा उसके गाँवों में निवास करती है और उद्धार मात्र गाँवों के पुनर्निर्माण में निहित है।[12] यदि देश का विकास चाहते हो तो ''गाँवों की ओर लौटो'' गांधी का यह नारा न तो काल्पनिक था न ही प्रतिक्रियावादी। मार्क्सवादियों तक ने स्वीकार किया है कि देहाती तथा शहरी क्षेत्रों के बीच सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक है। पश्चिम के अनेक समाजशास्त्रियों की भाँति गाँधी का भी विश्वास था कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ और समृद्ध होने से लोकतन्त्र को नयी शक्ति और स्फूर्ति मिलेगी।[13]

गांधी ने जहाँ इस क्रान्तिकारी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि भूमि उसकी है जो उसे जोतता है। वहीं वो आर्थिक समानता के सिद्धान्त के सबसे बड़े समर्थकों में से एक थे। उनका मानना था कि

लोगों को अपनी स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध होनी चाहिए। वो इस मार्क्सवादी सिद्धान्त के पक्षधर थे कि 'प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार'। उन्होंने आर्थिक समानता के कुछ मूलभूत तत्वों को निर्धारित किया जिनमें से कुछ इस प्रकार थे–प्रत्येक परिवार को सन्तुलित भोजन, रहने के लिए अच्छा घर, डाक्टरी सहायता तथा बच्चों के शिक्षा की सुविधा। आर्थिक समानता के आदर्श को प्राप्त करने के लिए जहाँ वो एक तरफ चरखा और उससे सम्बन्धित उद्योगों के पक्षधर दिखाई पड़ते हैं, वही वो भूमि–सम्बन्धों की भी व्याख्या करते हैं। उन्होंने भारतीय ग्राम्य व्यवस्था के भावी आर्थिक स्वरूप पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा कि ग्रामों के जीवन का पुनर्गठन किया जायेगा और ग्रामों को आत्मशासित इकाईयाँ बनाया जायेगा, जो अधिकतम सम्भव मात्रा में आत्मनिर्भर होंगी। देश के भूमि सम्बन्धी नियमों को इस सिद्धान्त के आधार पर संशोधित किया जायेगा कि भूमि पर अधिकार सचमुच भूमि जोतने वाले का ही होगा और समुचित जीवन स्तर के अनुरूप अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए आवश्यकता से अधिक भूमि किसी कृषक के पास न होगी। इससे एक ओर तो अनेक प्रकार की जमींदारी की और दूसरी ओर खेतिहर दासता की समाप्ति हो जायेगी।[14]

गांधी, परम्परागत ग्राम्य व्यवस्था के अधिकांश गुणों को अपने विचारों अथवा दर्शन के अनुरूप मानते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अहिंसा पर आधारित समाज की रचना केवल गाँवों में बसे उन समुदायों द्वारा हो सकती है जो गौरव युक्त शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व के लिए स्वेच्छया सहयोग की शर्त को स्वीकार करते है।[15]

गांधी के दर्शन में यह पूरी तरह स्पष्ट है कि परम्परागत भारतीय ग्राम्य व्यवस्था के अन्दर उपस्थित सहयोग, सह अस्तित्व की भावना, एक दूसरे के लिए श्रद्धा और स्नेह, बौद्धिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के बावजूद सरल एवं ईमानदार जीवन, प्रकृति से निकटता, सबके लिए हमेशा खड़े होने का जज्बा, कुछ ऐसे गुण थे जो उनकी रामराज्य की परिकल्पना के लिए सबसे उचित थे और इसीलिए वो गाँवों की व्यवस्था को दुरूस्त करने उनकी स्वतन्त्रता पर होने वाले अतिक्रमण को समाप्त करने के लिए सबसे अधिक चिन्तित थे। वो हमेशा चाहते थे कि गाँवों के बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक पिछड़ेपन को दूर कर उन्हें सर्वशक्तिमान बनाया जाय जिससे भारतीय संस्कृति का मूल बचा रहे।

भारत की स्वतन्त्रता से एक वर्ष पूर्व 1946 ई0 में उन्होंने स्वतन्त्रता के विस्तृत अर्थ को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा कि–

स्वतन्त्रता का आरम्भ निम्नतम तल से ही होना चाहिए। अतएव प्रत्येक गाँव सर्वशक्ति सम्पन्न गणराज्य या पंचायत होगा। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक गाँव को आत्म–सम्पुष्ट एवं अपनी व्यवस्था करने में यहाँ तक सक्षम होना होगा कि सारी दुनिया से मुकाबला करके भी वह अपनी रक्षा कर सके।[16]

उन्होंने भारतीय ग्राम्य व्यवस्था के स्वरूप पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा कि–

असंख्य गाँवों से बने इस ढ़ांचे में सदा विस्तारी वृत्त होंगे, अधिरोही कभी रही। जीवन सूची–स्तम्भ (पिरामिड) की भाँति नही होगा जिसमें शिखर का बोझ तल को वहन करना पड़ता है। लेकिन यह एक महासमुद्राकार वृत्त होगा, जिसका केन्द्र होगा वह व्यक्ति जो गाँव के लिए मर–मिटने को सदैव प्रस्तुत होगा और गाँव प्रस्तुत रहेगा गाँवों के वृत्त के लिए आत्मोसर्ग करने को, इस क्रम से अन्ततोगत्वा समष्टि ऐसे व्यक्तियों से निर्मित एक जीवन बन जायेगी जो अहंकार के वशीभूत होकर कभी आक्रामक नहीं होंगे बल्कि सदा विनीत रहकर उस महासुद्राकार वृत्त के बहुलांश के सहभागी बनेंगे जिसकी वे अभिन्न इकाईयाँ है। अतएव वाह्यत्म परिधि आभ्यान्तर वृत्त को कुचलने के लिए शक्ति संचय नहीं करेगी बल्कि आभ्यान्तर को शक्ति प्रदान कर स्वयं भी उससे शक्ति संगह करेंगी।[17]

इन सबके साथ ही गांधी सरल प्राकृतिक जीवन के पक्षपाती थे। जो ग्राम्य जीवन के अधिक नजदीक दिखाई देता है। यद्यपि कि वो पूर्ण ग्राम्यवादी नही थे फिर भी उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि विशाल एवं लघु उद्योगों में सामंजस्य स्थापित किया जाय। मूल उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हो साथ ही शहरी केन्द्रों की अव्यवस्थित तथा एकांगी वृद्धि को रोका जाय और उन्हें इस ढ़ंग से संगठित किया जाय कि वे गांवों की, जहाँ भारत की आत्मा निवास करती है कि आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। अर्थात् गांधी भारी उद्योगों एवं ग्रामोद्योग में सामन्जस्य स्थापित करने की बात करते हैं। उन्होंने

भारी उद्योगों का विरोध नहीं किया बल्कि भारी उद्योगों को आम लोगों की आर्थिक आत्मनिर्भरता से वंचित करने की प्रवृत्ति का विरोध किया साथ ही उन्होंने भारी एवं ग्रामोद्योग में सामन्जस्य की बात की।

गांधी का पूरा दर्शन परम्परागत भारतीय ग्राम व्यवस्था के नजदीक है। वो गाँवों के बौद्धिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास के पक्के समर्थक थे। साथ ही उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था को जीवन्त बनाने की कोशिश की परन्तु उनको पता था कि ये शहरी जीवन में सम्भव नही है इसीलिए उन्होंने ग्राम्य जीवन को समर्थन दिया तथा उसके पुनर्निर्माण की अथक कोशिश की जो शहर एवं गाँव में एक सार्थक सम्बन्ध स्थापित कर सके।

सन्दर्भ

1. डॉ0 बेनी प्रसाद, दि स्टेट इन एन्शन्ट इण्डिया, इलाहाबाद, 1928, पृ0 7.
2. वी0आर0 रामचन्द्रन, दीक्षितर, हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन, मद्रास, 1929, पृ0 316.
3. सर जार्ज वुड, इण्डस्ट्रियल आर्ट आफ इण्डिया, कारनेल यूनिवर्सिटी, 1880, पृ0 320.
4. एस0एन0 अग्रवाल, गांधियन कान्स्टीट्यूशन, फार फ्री इण्डिया, इलाहाबाद, 1946, पृ0 45.
5. पी0 बनर्जी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन एन्शन्ट इण्डिया, दिल्ली, 1973
6. मनुस्मृति, 1, 115, 116.
7. रिपोर्ट, सिलेक्ट कमेटी आफ हाउस आफ कामन्स, 1832, तृतीय खण्ड, पृ0 331.
8. डा0 राधा कुमुद मुखर्जी, लोकल गवर्नमेन्ट इन एन्शन्ट इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1919, पृ0 10.
9. प्रो0 एस0एन0 अग्रवाल, पूर्वोद्धृत, पृ0 48.
10. ए0आर0 देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन, दिल्ली, 1976, पृ0 38–39.
11. वी0पी0 वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, आगरा, 1989, पृ0 349.
12. शिवशंकर सिंह, भारत में समन्वित ग्रामीण विकास एवं नियोजन, नई दिल्ली, 2000, पृ0 X.
13. वी0पी0 वर्मा, पूर्वोद्धृत, पृ0 349.
14. हरिजन, 20 अप्रैल, 1940.
15. हरिजन, 13 जनवरी, 1940.
16. हरिजन 28 जुलाई, 1946
17. वही.